Wisdom Vortex:
International Journal of Social Science and Humanities

Bi-lingual, Open-access, Peer Reviewed, Refereed, Quarterly Journal

e-ISSN: 3107-3808

Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities, Volume: 01, Issue: 03, Oct-Dec 2025

How to cite this paper:
Kujur, R. G. (2025). Jharkhand ke Adivasi Sanskriti Ewam Adiwasiyatata par Sankat ke Badal, *Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities, 01*(03), 01 – 05. https://doi.org/10.64429/wvijsh.01.03.007

Received: 09 Aug. 2025
Accepted: 30 Sep. 2025
Published: 21 Oct. 2025

Copyright © 2025 by author(s) and Wisdom Vortex: International Journal of Social Science and Humanities. This work is licensed under the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY- 4.0).
https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

झारखण्ड के आदिवासी संस्कृति एवं आदिवासियतता पर संकट के बादल

रेशमा ग्लोरिया कुजूर [1]

सारांश

आदिवासी समाज में आदिवासियता के हर पहलूओं का चिंतन मनन किया गया है। आदिवासियों के संस्कृति, कला, भाषा एवं जल, जंगल, जमीन आदिवासियतता की अपनी पहचान है। पर वर्तमान युग में शासकों की गुलामी, सरकारी नीति, धर्म परिवर्तन, अधिग्रहण, विस्थापन व आधुनिक विदेशी शिक्षा में हमारी आदिवासियतता को काफी हद तक नुकसान पहुंचाया है। कहना चाहिए कि हमारी आदिवासी संस्कृति पर संकट के बादल छाये हुए हैं। हमारे पुरखों ने जो जीवन दर्शन तय किया था जो मान्यता स्वीकार की थी वह खंडित होता जा रहा है। हम अपनी मातृभाषाओं से दूर बहुत दूर भाग रहे हैं। आदिवासियों में जागृति की कमी होती जा रही है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि हमारे पास न मातृभाषा बच पा रही है और न हमारी सर्वोत्तम समस्त संस्कृति। अपनी आदिवासियता की रक्षा के लिए एवं इस खतरे के बादल से उबरने के लिए उस पर चर्चा करना समीचीन होगा। हमारी अखरा धूमकुड़िया आदि की संस्कृति समाप्त होती जा रही है। आवश्यकता है इस अखरा संस्कृति को बचाने की। तभी हम आदिवासियों की आदिवासियतता को बचा पाएंगे। वर्तमान में इसे बचाना और बनाना ही हम आदिवासियों की सबसे बड़ी चुनौती है।

विशिष्ट शब्द: *आदिवासी, आदिवासियतता, संस्कृति भाषा, शहरी शिक्षा, सरकारी नीति, धर्म परिवर्तन, अधिग्रहण विस्थापन, अस्तित्व, आर्थिक समस्या, गरीबी, अज्ञानता, वनवासी*

जिस प्रकार भारतवासी बोलने से हम समझते हैं कि वह व्यक्ति भारत में वास करता है। उसी प्रकार आदिवासी माने वह व्यक्ति जो आदि काल से ही उस क्षेत्र में निवास करता है। झारखंड आदिमानव से आदिम जाति का क्षेत्र बना। आदिम जाति तथा आदिवासी (जनजाति) कहलाने वाली जातियाँ यहाँ इतिहास के अज्ञात काल से रहते आ रहे हैं। यहीं से वे परिवार बढ़ाने के साथ साथ भारत के चारों दिशाओं में फैलते गये। उनके फैलने के साथ ही आर्यों का आगमन बाहर से होता गया। वे आदिवासियों को लूटते खसोटते गये। आर्य बाहर से आये थे। झारखंड में आदिवासियों की संख्या धीरे धीरे अल्पसंख्यक होती गयी और आर्य बहुसंख्यक होते गये। वर्तमान में मूलनिवासी झारखंडी की आदिवासियतता खतरे में है। विस्थापन,

[1] शोध छात्रा, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

पलायन, गरीबी, अशिक्षा, अज्ञानता, अंधविश्वास, नशापान, बेदखली, भयंकर शोषण इत्यादि से। इसी दबाव और आगमन के कारण गैर झारखंडी इस कदर सारे लाभ के पदों पर या सेवा में छा गये और अभी भी यह सिलसिला जारी है। बिहार शासन के काल में बाढ़ की तरह झारखंड में सभी प्रमुख नगरों शहरों में छा गये कि झारखंडी जल्दी कहीं दिखते नहीं। आधुनिक सुख सुविधा दुकानें, कार आदि केवल उनके पास ही भरे पड़े हैं। झारखंडी अगर दिखते हैं तो धांगर-धांगरीन के रूप में, नौकर-चाकर, दाई-आया, रेजा-कूली के रूप में जो रोज खटते मरते हैं। आदिवासियों की अखरा धूमकुड़िया आदि की संस्कृति समाप्त होती जा रही है। आवश्यकता है हमारे आदिवासियतता को बचाने की। आदिवासियतता का बचाव संस्कृति का बचाव है।

वर्तमान में आदिवासियों की संस्कृति एवं आदिवासियतता खतरें में है । इसके कई कारण है जैसे :-

1. आदिवासी इतिहास की कमी, चूँकि आदिवासी पढ़े लिखे लेखक, कवि या इतिहासकार नहीं थे। फलत: उनका कोई लिखित इतिहास नहीं है। उनका इतिहास मात्र दंतकथाओं से थोड़ा बहुत ज्ञात होता है। इससे उनकी आदिवासियता समय गुजरते गुजरते सुनाई जाती रही है। इससे झारखंडी आदिवासियतता खतरे में पड़ गयी है।
2. आधुनिक आवश्यकता :- ज्यों-ज्यों समाज या देश विकास करता जा रहा है, लोगों को भी उसी के साथ कदम से कदम मिला के चलना पड़ता है और जागरूक आदिवासी वर्ग भी इस मार्ग पर आगे बढ़ते जा रहे हैं। चूँकि गांवो में ऐसा स्कूल कॉलेज नहीं है, जहां ग्रामीण आदिवासी पढ़ लिखकर विकास के मार्ग पर चल सके। फलत: अनेक आदिवासी लड़के और लड़कियों को शहरों के विद्यालयों में पढ़ने के लिए विवश होना पड़ता है। उन्हें शहरों के छात्रावास या डेरा में रहना पड़ता है वे मात्र छुट्टियों में ही घर गांव आते हैं और छुट्टी समाप्त होने पर पुन: लौट जाते हैं। वे शहरी वातावरण में पलते बढ़ते हैं। वे उसी वातावरण में ढलने लगते हैं। ग्रामीण आदिवासी वातावरण से बिलकुल दूर हो जाते हैं। मात्र आदिवासी गोत्र से ही आदिवासी रह जाते हैं, न बोलीं-वचन से और न आदिवासी संस्कृति से। वे आधा शहरी और आधा आदिवासी रह जाते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे हमारी आदिवासियतता ही समाप्त हो रही है।
3. नौकरी चाकरी :- वर्तमान समय में मात्र खेती-बारी से ही परिवार का विकास संभव नहीं है। लोगों को व्यवसाय या नौकरी की आवश्यकता है। बच्चों की अच्छी शिक्षा गांवों में ही रहकर संभव नहीं है। फलत: आदिवासियों को भी रोजी-रोटी की खोज तथा बच्चों की उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता, मुंबई, दिल्ली जैसे दूर शहरों में नौकरी करने को मजबूर होना पड़ रहा है। वहां अन्य जातियों की अधिकता है। ऐसी परिस्थिति में वह आदिवासी परिवार आदिवासी संस्कृति से बिलकुल दूर हो जाते हैं। वह कैसे अपनी आदिवासियतता को बचा पाएगा। उसके बच्चे भी उसी परिवेश में ढल जाते हैं। आदिवासी रीतिख़रस्म तथा संस्कृति से बिलकुल अनभिज्ञ रह जाते हैं।
4. भाषा ज्ञान :- अधिकतर शिक्षित वर्गों में अपनी मातृभाषा के प्रति जागृति की कमी पायी जाती है। चूंकि वे अपनी भाषा के अलावा हिन्दी, अंग्रेजी और आदि भाषा जानते हैं। अगर वे नौकरी करते हो तो अधिकतर अन्य लोगों के संपर्क में रहते हैं। उनके साथ हिन्दी अथवा अंग्रेजी बोलते रहते हैं। दूसरों के बीच अपनी भाषा में बात करने में उन्हें शर्म आती है वे हीनता की भावना का अनुभव करते हैं जबकि गैर आदिवासी अपनी भाषा के प्रति शान सम्मान और गौरव का अनुभव करते हैं। दरअसल जो व्यक्ति भाषा का महत्व नहीं समझता, वह आदिवासी होने का महत्व भी नहीं समझ पाएगा। और न ही अपने आप में आदिवासी होने का गौरव ही महसूस कर पाएगा। जो आदिवासी व्यक्ति अपनी भाषा नहीं जानता है, वह अपनी आदिवासियतता की पहचान खो देता है। इसी प्रकार किसी-किसी शहर में कुछ मुंडा, उरांव, खड़िया, हो, संथाल आदि आदिवासियां जातियां छिटफूट रहती है। वे आदिवासियता को बरकरार रखने की कोशिश तो करते हैं, पर सबकी संस्कृति तथा भाषा में भिन्नता होती है। जिससे वे एक समुदाय विशेष की तरह अपनी संस्कृति का प्रयोग नहीं कर पाते हैं। इससे जो आदिवासी संस्कृति है, उसे सही ढंग से मना नहीं पाते हैं । फिर भाषा की भिन्नता के कारण वे अपनी-अपनी भाषा भी बोल नहीं पाते। उन्हें कॉमन भाषा सादरी या उस शहर की स्थानीय भाषा बोलनी पड़ती है । इससे आदिवासियतता स्वत: ही समाप्त होती जाती है।

5. सरकारी नीति :- वर्तमान में सरकारी नीति आदिवासियतता को समाप्त करने का मुख्य लक्ष्य रखती है। आदिकाल से ही सरकार विकास के नाम पर आदिवासियों को विस्थापित करती आ रही है। देश में उद्योग धंधो, जल-परियोजना, विद्युत-परियोजना, सड़क की चौड़ीकरण आदि के नाम पर उनकी जमीन को अधिग्रहण कर रही है बदले में पुर्नवास की व्यवस्था नहीं करती है, जिससे अनेक आदिवासी विस्थापित होकर दर-दर ठोकर खा रहे हैं। सरकार से प्राप्त सारी सुविधाएं समाप्त कर दी गयी है। आदिवासियों का अस्तित्व ही समाप्त कर दिया गया। इन्हें कब और कहां और कैसे समाप्त कर दिया जाएगा पता ही नहीं। अनेक आदिवासी नेता तो खुद भ्रष्ट और खोखली होती जा रही है। उन्हें तो अपनी कुर्सी की चिन्ता है न कि आदिवासियों की। अनेक राजनीतिक दल अपने स्वार्थ के लिए लोगों को एक दूसरे से लड़ा रही है।
6. धर्म परिवर्तन :- धर्म परिवर्तन की आदिवासियत को कमजोर करने वाला है। लोग सरना धर्म छोड़कर ईसाई धर्म स्वीकारते हैं, तो वे बहुत से आदिवासी रीति-रिवाज संस्कृति, पहनावा आदि में बदलाव ले आते हैं। वे नई सभ्यता में कदम रखते हैं, जो आदिवासी सभ्यता से भिन्न हो जाते हैं। वे आदिवासी नेग-दस्तूर यहां तक कि रहन-सहन बोली-वचन भूल जाते हैं। आदिवासी नाच-गान तथा पर्व त्योहारों को भूल जाते हैं। इस प्रकार धर्म परिवर्तन भी आदिवासियों को आदिवासियतता से दूर ले जाता है। इतना होने के बावजूद ईसाई आदिवासी ही आदिवासी की आदिवासियत को कायम रखने में समर्थ हैं।
7. प्राकृतिक संसाधनों का अधिग्रहण :- सरकार ने अनेक योजनाओं के नाम पर व हर पैमाने पर प्राकृतिक संसाधानों का अधिग्रहण करना शुरू कर दिया। विभिन्न नई परियोजनाओं पर विशाल बांध-निर्माण करने का कार्य, जिसके तहत एक बड़ी जनसंख्या को अपने घर-परिवार जमीन एवं जीविका के साधनों से वंचित होकर विस्थापन के लिए मजबूर होना पड़ा है। विकास के लिए संसाधनों पर अधिकार का दूसरा पहलू विस्थापन है। मूलत: विस्थापन एक ऐसी भारतीय समस्या है जिससे कि एक घर परिवार का, उनके रोजी-रोटी के संसाधनों से पीढ़ियों से जहां जैसे हैं, ऐसे क्षेत्र से उनके सामाजिक आर्थिक रिश्ते-नाते के इलाके से टूटना वस्तुत: उन्हें बहुत ही हादसा देनेवाली बात होती है। मानसिक तनाव से लेकर आर्थिक समस्या तक उन्हें कई कठिनाईयों से जूझना पड़ता है।

   आज आदिवासी परिवारों को वनों से निकाला जा रहा है, उनका घर-परिवार बिखर रहा है क्योंकि जंगल ही उनका सब कुछ है अगर उनसे यह भी छीन लिया गया तो उनके पास रहेगा क्या, उनका तो आस्तित्व ही खत्म हो जाएगा। फिर सरकार ने बहुत चालाकी से आधाार कार्ड बनाया है, जिसमें लिखा गया है - आम आदमी जिसका अर्थ है, आदिवासी नही आम आदमी है। उसे आदिवासी जाति से हटा दिया गया है। इससे उसके सारे आदिवासी और अधिकार समाप्त हो गये हैं। जमीन के बदले नौकरी मांगने का बहाना बना कर कोल इंडिया का प्रसिद्ध कम्पनी ग्रामीण विस्थापितों को नौकरी नहीं देता है। कई बार लक्ष्य एवं जीवन-यापन के दोहरे संघर्ष से व्यक्ति कुंठित, हताश एवं उद्देश्यहीन बनता जा रहा है।

आदिवासियों की आदिवासियतता में अनेक निम्नलिखित प्रभाव पड़ रहे हैं :-

हमारी संस्कृति में पाप पुण्य की मान्यता सामाजिक असामाजिक कर्म से है। मृत्यु के बाद जीव स्वर्ग-नर्क के चक्कर में न पड़कर व अदृश्य रूप में छाया प्रवेश का संस्कार संपन्न कर, पुरखों में सम्मलित करने की मान्यता है। यही कारण है कि आदिवासी व्यक्ति चोरी, धोखा, बेईमानी, असत्य आदि से भय खाता है। परंतु अब यह भय समाप्त दिखाई दे रहा है। यह सांस्कृतिक संकट हमें कहां ले जाएगा ? धनोर्जन के लोभ में न हम अपने को न पराए को पहचान रहे हैं। जिसे जहां मौका मिल रहा है। उपर्युक्त भय से निर्भय होकर सारे कर्म कर रहा है।

जंगल हमारा आश्रय रहा है। पर जंगल के ठीकेदारों ने उसे सुरक्षा के नाम पर उजाड़ा ही है। पहले आदिवासी समाज ने जंगलो के मध्य खेत खलिहान बनाए ताकि जंगल के खर-पतवार वर्षा के साथ खेतों को उपजाऊ बना दे पर जंगल रहा नहीं। खेती बंजर की उपज सी हो रही है। फिर खेत-खलिहानों के बीच उंचे स्थल पर गांव बसाते थे और गांव के मध्य में अखरा सजाते थे। हरेक घर में आंगन होता था। पर शहरी नगरीकरण के कारण न घर का आंगन, न गांव का अखरा, जिस अखरा में पूरा गांव बराबरी का अनुभव करता था। धांगर-गोमके, स्त्री-पुरूष बड़े-छोटे, धनी-गरीब, बच्चे-बुढ़े जहां एक हो जाते थे वे अब विकृत होने लगे हैं। अखरा कला या संगीत में हमारे पुरखों के धरोहर वाद्य, मांदर, नागाड़ा, बांसुरी,

होहिला केंदरा, बनम आदि अब धीरे-धीरे लुप्त हो रहे हैं। आधुनिक वाद्यों ने इनका स्थान ले लिया है। गाने के स्थान पर मोबाइल इत्यादि से बजाया जा रहा है। यह हमारी आदिवासी संस्कृति के संगीत कला का घोर संकट है। गीतों नृत्यों में जो शिष्टता थी अब वे अशिष्ट होने लगे हैं। अखरा से लगा धुमकुड़िया, गितिओड़ा, सामाजिक शिक्षा केन्द्र अब समाप्त हो गया। अदिवासियों की आदिवासियतता नष्ट होने का सबसे बड़ा प्रभाव है विस्थापन, पलायन। कृषि-वन आश्रित जीवन अब सपने बनते जा रहे हैं। औद्योगिक खदान, बांध के नाम पर विकास के सपनों के आधार पर आदिवासी लोगों की भूमि जंगल जल से बेदखल किया जा रहा है। स्वावलंबी जीवन कृषि-वन पर आधाारित जीवन अब धांगर-धांगरिन, रेजा-कूली, आया, दाई, नौकर, मजदूर के रूप में नगरों-महानगरों में मर खप रहे हैं। अपनी भाषा-संस्कृति अपना अस्तित्व अपनी पहचान सब मिटा रहे हैं।

पर्व-त्योहार अब पीने पिलाने पर चार दिन के उपरांत भी हप्तों हड़िया की खुमारी में बिताया जा रहा है। विवाह - शादी अब परंपारिक से अधिक अंतरजातीय विवाह, कुंवारी माताएं के रूप में दिखाई देने लगा है विवाह की पवित्रता शालीनता अब विकृत हो रही है। पढ़ी-लिखी लड़कियां लोभ-लालच धोखा उंच जीवन के चक्कर में पड़ रही है तो अनपढ़ भी पीछे नहीं है कन्यामूल्य वर मूल्य में बदल रहा है।

प्राय: बच्चों के नामकरण अपने आजा-आजी, दादा-दादी या नाना-नानी के नाम पर होता था। इस सांस्कृतिक मान्यता के अनुसार अब उनका पुनरागमन हुआ है। पर अब फैशन वाले नाम अधिक चल रहे हैं। सभ्य बनने के चक्कर में हम अपनी आदिवासियतता से दूर होते जा रहे हैं।

आदिवासी समाज में सामाजिक संबंधो को मजबूत बनाने के लिए सहिया करम डाइर, गुलइची फूल, जावा फूल आदि जोड़ने की संस्कृति थी। यह सहिया संबंध हृदय का साथ जोड़ना होता था। बड़े-छोटे, जात-परजात, धर्म-अधर्म, उंच-नीच, धनी-गरीब, स्त्री-पुरूष के मध्य बिना किसी भेदभाव के विपरीत स्थिति में जोड़ते और पीढ़ी दर पीढ़ी हर दुख सुख में साथ निभाते थे। हर सहिया अपने सहिया का हित पहले देखता, पर अब सहिया संस्कृति देखने को नहीं मिलती अब मित्रता बराबर वालों के साथ होती है। इसी तरह हर बड़ा, लंबा, भारी, उबाऊ काम लोग मदइत (सहयोग) के रूप में करते-कराते थे। जितने भी काम लेते उतने दिन सामुहिक उत्तम भोजन होता नृत्य संगीत का आनंद चलता। अब मदइत के स्थान पर जैसा काम करा रहा है जिसके पास पैसे हैं उसका काम हो जाता है पर पैसे के अभाव में मदइत संस्कृति के आभाव में वह अभाव ग्रस्त ही बना रह जाता है।

झारखंड के आदिवासी की आदिवासियतता पर दिकुओं की बढ़ती आबादी के द्वारा भी खंडित हुआ है। अंग्रेजी शिक्षा के मोह ने हमें बड़ा बनने का सपना दिखाया है पर वह अपने जड़ से अपनी संस्कृति से कटता जा रहा है। अब सीधे अंग्रेज और अंग्रेजी संस्कृति में रमते जा रहे हैं। झारखंड की आदिवासियतता आज इसी से संकट में है।

आदिवासियों के आदिवासियतता एवं उनकी संस्कृति को बचाने के उपाय :-

आदिवासी की आदिवासियत की पहचान उसकी एक विशिष्ट संस्कृति और भाषा से होती है उनका रहन-सहन, अचार-विचार, रंग-ढंग, खान-पान, पर्व-त्योहार, नाच-गान, अतिथि-सत्कार, दूसरों से अलग और खास होता है अगर ऐसा नहीं है तो यह आदिवासी की आदिवासियता नहीं है एक आदिवासी की आदिवासियत के लिए उसकी अपनी भाषा का होना और उसका व्यवहार एक जरूरी शर्त है। अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति जागरूक होना है क्योंकि संस्कृति समाहित है भाषा में। जब तक भाषा रहेगी तब तक संस्कृति बची रहेगी। अपनी भाषा-संस्कृति को कभी भी भूलना नहीं है जिस दिन हम अपनी भाषा तथा संस्कृति से दूर हो जाएंगे हमारी आदिवासियतता समाप्त हो जाएगी। हमलोग मात्र गोत्र से ही आदिवासी रह जाएंगे। हमारा कोई आदिवासी आधार नहीं रह जाएगा। इसलिए इसका संरक्षण तभी होगा जब हर विद्यार्थी को उसकी मातृभाषा से शिक्षा मिले। मातृभाषा से राष्ट्र-भाषा एवं अंतर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेजी आदि साथ ले चलें। किसी भी पढ़ाई के उच्चतर स्तर पर विज्ञान, वाणिज्य तकनीकी, इंजीनियरिंग प्रबंध आदि ही क्यों न हो हर बच्चे को मातृभाषा माध्यम से शिक्षा अनिवार्य हो। तभी संस्कृति का संरक्षण है।

जहां तक आदिवासी की आदिवासियतता की पहचान और अनुभूति का सवाल है तो आदिवासी नृत्य अवश्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है लेकिन आदिवासियों को अपनी पहचान मात्र से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए, अपनी संस्कृति के रसास्वादन के साथ-साथ उन्हें अपनी समाज को उन्नति और विकास के मार्ग अग्रसर करने की भी जरूरत है। उन्हें दूसरों के समकक्ष

राजनीति में, देश के संचालन में हिस्सेदारी और जिम्मेवारी लेने की जरूरत है। इसी स्तर पर आदिवासी नेतृत्व सही नेतृत्व की अत्यंत आवश्यकता है।

आदिवासी की सबसे बड़ी पहचान है जल जंगल और जमीन। आज आदिवासी हितों पर उनके जल जंगल जमीन पर हमला हो रहा है । इसलिए आवश्यकता है कि सही प्रकार के प्रतिनिधि चुने जाएं, वे ऐसे प्रतिनिधि हो जिन्होंने आदिवासी कल्याण के लिए कुछ काम कर दिखाया हो या संघर्ष किया हो। कहा जाता है कि "महान व्यक्ति जनमते नहीं बनते हैं।" अच्छे और ईमानदार नेता हो तो निस्वार्थ भावना से अपने आदिवासी समाज के हित में काम एवं संघर्ष करेंगे ऐसी हमारी आशा है।

उद्देश्य

उपर्युक्त विचारों को प्रस्तुत करने का मुख्य उद्देश्य यही है आदिवासियों की आदिवासियतता को बढ़ावा देना एवं बचाए रखना, भाषा एवं संस्कृति को बनाए रखना एवं अपने जल जंगल और जमीन की रक्षा करना।

निष्कर्ष

आदिवासी भाई-बहनों से कहना है कि हमें ऐसे ही ऐन-केन तरीके से मार डाला जा रहा है। हमें अपने अस्तित्व के लिए मरने को तैयार हो जाना है। हमें कोई नहीं बचाएगा। अपनी रक्षा खुद करनी है। अपनी आदिवासियतता खतरे में है उसकी रक्षा करना हमारा परम दायित्व है। हम में से प्रत्येक स्त्री-पुरूष या युवक-युवती को आगे आना है अन्यथा हमारी आदिवासियतता समाप्त होने में कोई विलंब नहीं है। अपनी भाषा-संस्कृति को कभी भी भूलना नहीं है। जिस दिन हम अपनी भाषा तथा संस्कृति से दूर हो जाएंगे, हमारी आदिवासियतता समाप्त हो जाएगी। इसलिए भाषा-संस्कृति एवं जल, जंगल और जमीन की रक्षा करना ही हमारी आदिवासियतता की पहचान है।

इसके साथ-साथ मैं आदिवासी शुभचिंतको तथा धर्मगुरूओं से आग्रह करना चाहती हूं कि आपलोग तो थोड़ा अधिक ज्ञानी तथा समझदार बने। आपलोग ऐसा तरीका या उपाय ढूंढ निकालिए जिससे भावी पीढ़ी और आदिवासियतता को बचाया जा सके।

अंत में पुनः सभी सरना आदिवासी तथा ईसाई आदिवासियों से कहना है कि हम सर्वप्रथम आदिवासी हैं, बाद में सरना-ईसाई आदिवासी। राजनीतिक दल सरना-ईसाई में विभेद पैदा कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रही है। सरकार मीठी-मीठी बातों से हमारे बीच जहर घोल रही है। वह झारखंड को आदिवासी विहीन झारखंड बनाना चाहती है, जिससे उसे मनचाहा भूमि मिल जाए। जब तक आदिवासी रहेंगे सरकार को जमीन नहीं मिलेगी। अतः उसका मुख्य लक्ष्य है आदिवासियों को जड़मूल से समाप्त करना।

संदर्भ

1. आदिवासी दस्तक, रमेज़ चन्द्र मीणा, अलख प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2013
2. जंगल-जंगल जालियांवाला, हरिराम मीणा, शिल्पायन प्रकाशन, संस्करण, 2013
3. झारखण्ड की सांस्कृतिक विरासत, डॉ. गिरीधारी राम गंझू, गिरिराज, पृथ्वी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2019